रेवती रमण होने का अर्थ

सम्पादन

सतीश कुमार राय

अशोक गुप्त

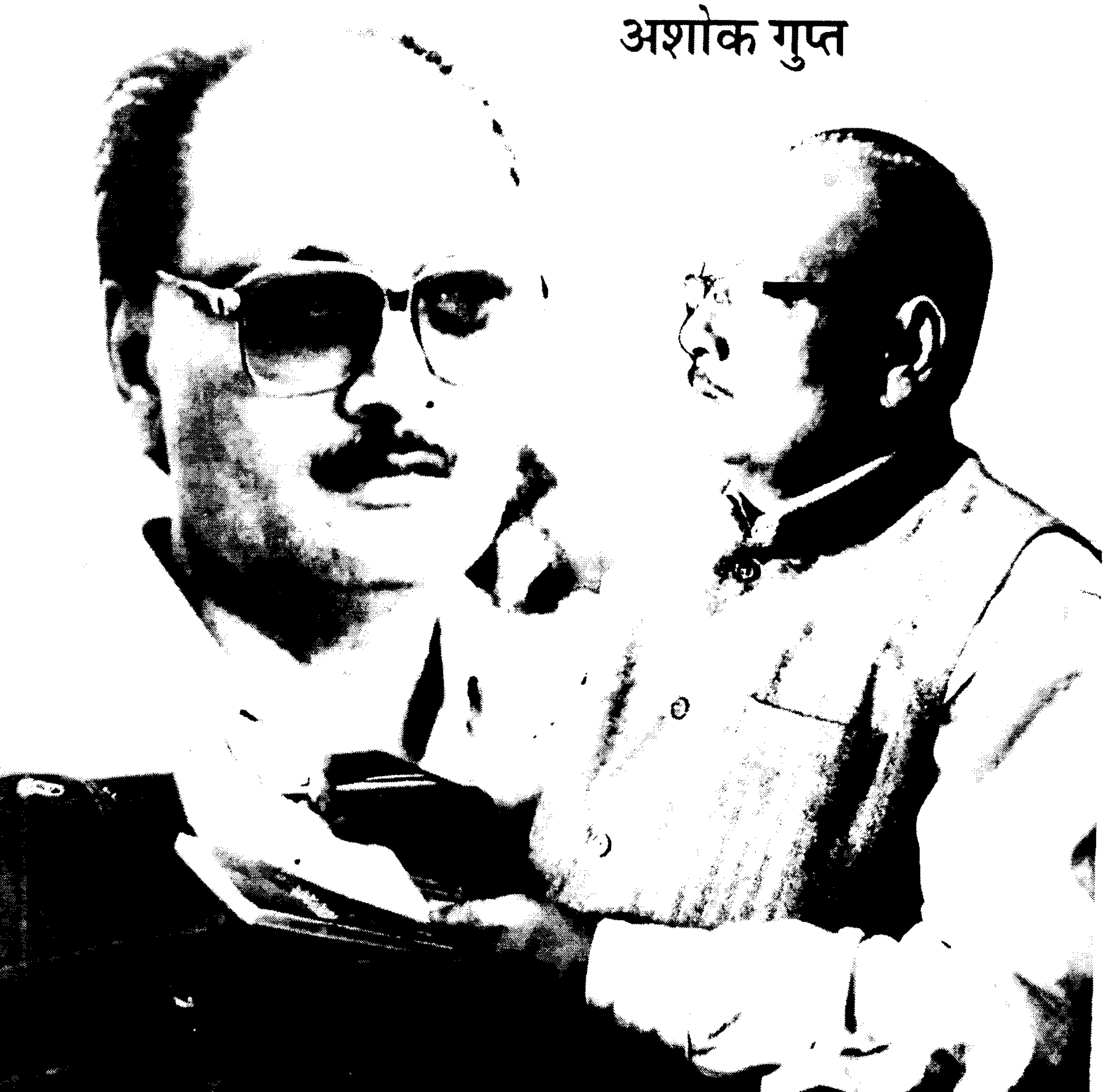

रेवती रमण होने का अर्थ

सम्पादक

सतीश कुमार राय
अशोक गुप्त

अभिधा प्रकाशन

प्रथम संस्करण
2020
सर्वाधिकार
सम्पादक

प्रकाशक
अभिधा प्रकाशन
रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002

अक्षर-संयोजन
एस. कुमार

मुद्रक
बी० के० ऑफसेट, दिल्ली - 32

मूल्य
225/- (दो सौ पच्चीस रुपये)

Rewati Raman Honey Ka Arth
***Edited By* Dr. S.K. Rai & A. Gupta** **Rs. 225.00**

अनुक्रम

सम्पादकीय		: सतीश कुमार राय	7
प्रस्तुति		: अशोक गुप्त	21
1.	साथ चलते हुए	: विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	23
2.	हिन्दी साहित्य के चर्चित आलोचक...	: रिपुसूदन श्रीवास्तव	26
3.	आलोचना का कालयात्री	: मदन कश्यप	32
4.	रेवती रमण की आलोचकीय सक्रियता	: रामप्रवेश सिंह	36
5.	डॉ. रेवती रमण की आलोचना-दृष्टि	: विजयशंकर मिश्र	42
6.	साक्षात्कार	: राकेश रंजन	46
7.	साक्षात्कार	: कल्याण कुमार झा	57
8.	समय की रंगत	: अंजना वर्मा	66
9.	एक आलोचक का कवि	: पूनम सिंह	71
10.	अजनबियों के संग चल रहा थका अकेला	: राकेश रंजन	77
11.	कविता और मानवीय संवेदना	: जगदीश विकल	84
12.	युवा समीक्षक का प्रबुद्ध समीक्षात्मक विवेक?	: वेदप्रकाश अमिताभ	90
13.	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य	: कृष्णचन्द्र लाल	94
14.	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य...	: रवीन्द्र उपाध्याय	99
15.	रचना की तरह आलोचना	: रमेश ऋतंभर	103
16.	रेवतीरमण का 'समकाल'	: प्रेमशंकर रघुवंशी	105
17.	'कविता में समकाल' एक समीक्षा कृति	: श्रीराम परिहार	108
18.	संघर्ष तपी काव्य-साधना का संधान	: शेखर शंकर मिश्र	115
19.	जातीय संवेदना के सजग साहित्य चिन्तक	: संध्या पाण्डेय	121
20.	जातीय मनोभूमि की तलाश	: अनन्तकीर्ति तिवारी	125
21.	सहज-सरल, स्वाभिमान की आवाज	: सुशांत कुमार	130
22.	'आवाज के परिन्दे' और उनके सलीम अली	: अनामिका	134
23.	समकालीन कविता की पुख्ता पहचान	: रामेश्वर द्विवेदी	141
24.	कवियों की गली से गुजरता कवि आलोचक	: उज्ज्वल आलोक	147
25.	पुस्तकों के फ्लैप से		153
चिट्ठी-पत्री			155
चित्रावली			191

❒

सहज-सरल, स्वाभिमान की आवाज : जातीय मनोभूमि की तलाश

–सुशांत कुमार

भक्ति आंदोलन के उद्‌भव के कारणों की छानबीन के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतों से भिन्नता एवं समानता के तत्त्वों की पहचान करते हुए डॉ० रेवती रमण विवादित विषयों से बिना उलझे सार्थक विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार करते हुए दीखाई देते हैं। वे दक्षिण भारत में वैष्णव धर्म के संस्थापक, रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्क के प्रयासों के साथ-साथ रामानंद, वल्लभाचार्य एवं चैतन्य महाप्रभु के क्रांतिकारी योगदानों के प्रशंसक हैं। 'जातीय मनोभूमि की तलाश' आलोचना-संग्रह में 'भक्ति आंदोलन : सगुणोपासना' शीर्षक के अंतर्गत मुख्य तौर पर उनकी स्थापना यह है कि भक्ति आंदोलन आलवार भक्तों की भावनामयता, रामानुजाचार्य आदि की दार्शनिक प्रतिपत्तियों एवं नाथों-सिद्धों के लोक धर्म के सम्मिलित प्रभाव को लेकर विकसित हुआ है। इस्लाम की सांस्कृतिक चुनौती ने उसके तीव्र विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण अवश्य किया था। साथ ही, वे भक्ति-काव्य को महज सर्जनात्मक साहित्य नहीं मानते हैं, बल्कि उसे धर्म, संस्कृति और सामाजिक मान्यताओं के पुनर्मूल्यांकन की तरह देखते हैं। वास्तव में भक्ति-काव्य गहरे मानवीय सरोकारों से उपजा है। उसका प्रयोजन जागृति का है। 'विनय पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं–

'अबलौं नसानी, अब न नसैहों
राम-कृपा भव-निसा सिरानी,
जागे फिरि न डसैहों।''

जागरण के इसी सातत्य में भक्ति-काव्य के मूल्य परंपरा एवं समाज की मान्यताओं की स्वीकृति व निषेध की चयनधर्मी प्रक्रिया से निर्मित हुए हैं– समीक्षक रेवती रमण। 'विनय पत्रिका' को जब हिन्दी गीतिकाव्य का शिखर कहते हैं तो हमें

यह समझना चाहिए कि उनका यह विश्लेषण भावुकता के तहत नहीं बल्कि गहन शोध का परिणाम है। वे कहते हैं—'''विनय पत्रिका' गीतिकाव्य है, हिन्दी गीतिकाव्य का शिखर है। गोस्वामीजी के अंतर्जगत् का प्रकाशन होने से संवेदनात्मक ज्ञानधारा में इसका स्थान सबसे ऊपर है।'' (जातीय मनोभूमि की तलाश, पृ.-43)

डॉ० रेवती रमण पेशे से अध्यापक, हृदय से कवि एवं स्वभाव से आलोचक हैं। उनका आलोचना कर्म सतत व व्यापक अध्ययन के साथ-साथ अन्तर्विषयक ज्ञान की उपज है। वे खंडन-मंडन तथा स्थापना में कम विश्वास करते हैं। यही कारण है कि उनकी आलोचना विवाद को जन्म नहीं देती है। विवादों में न रहने का कारण यह भी हो सकता है कि वे किसी विचारधारा के प्रति पूर्वग्रही नहीं है, न ही बाएँ-दाएँ में से किसी एक को चुनने में उनकी कोई रुचि है। 'जातीय मनोभूमि की तलाश' आलोचना संग्रह में वे इसे स्वीकार भी करते है—''ईमान की बात कहूँ तो कोई एक पक्ष चुन लेना मेरे लिए सदैव दुष्कर रहा है। एक जिद या संकेत पर इधर या उध र पंक्ति में खड़ा हो जाना मुझे स्वीकार्य नहीं हुआ है। क्या यही स्वाधीन मन की गतिविधि है? या स्वेच्छाचारी अराजक उपक्रम?'' इसलिए जब हिन्दी साहित्य की आलोचनात्मक पुस्तक में 'स्मृति की प्रयोगशाला में शीर्षक से पूज्य बापू की आत्मकथा 'सत्य के साथ प्रयोग' विमर्श करते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि उनका अन्तरविषयक ज्ञान किस तरह साहित्य को समृद्धि प्रदान करती है? हिन्दी की जातीय परंपरा को समझने के लिए गांधी को समझना कितना आवश्यक है, इस तथ्य से रेवती रमण अच्छी तरह अवगत हैं। इसलिए हिन्दी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों के साथ-साथ संपूर्ण भारतीय स्वाधीनता संग्राम को नेतृत्व प्रदान करने वाले गांधीजी को भी परंपरा की महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखते हैं।

'जातीय मनोभूमि की तलाश' की दिशा में रेवती रमण छायावाद के प्रमुख हस्ताक्षर जयशंकर प्रसाद की रचना दृष्टि से अधिक प्रभावित लगते हैं। इसलिए आलोच्य पुस्तक के कुल 17 आलेखों में से अकेले प्रसाद के लिए तीन आलेखों का संयोजन करते हैं। स्वाधीन रचना दृष्टि बीसवीं शताब्दी का मानव संघर्ष और कामायनी तथा कामना के नुपूर और प्रार्थना के लिए तीन आलोचनात्मक आलेख आलोचक ने अपने प्रिय लेखक प्रसाद को निवेदित किया हूँ। प्रसाद के बारे में वे लिखते हैं कि ''साहित्य व कला के बारे में उनकी स्पष्ट मान्यता थी और उसमें देश और जाति के लिए प्रतिष्ठा की जगह भी थी। यह सच है कि एक पराधीन जाति राष्ट्रवादी हुए बिना 'स्वत्व' की सिद्धि नहीं कर सकती।'' (पृ.-60) यह सत्य है कि पराधीन राष्ट्र में प्रसाद स्वर्णिम अतीत के वास्तविक सिद्धांतों, मान्यताओं और व्यवहारों को पुनर्जीवित कर रहे थे। पर वास्तव में अतीत को पुनर्जीवित नहीं किया

जा सका। भारत के प्रमुख धार्मिक और सामाजिक सुधारक जस्टिस रानाडे कहते हैं कि समाज एक निरंतर परिवर्तनशील जीवित सत्ता है और कभी अतीत की ओर नहीं पलट सकती। "मृत तथा दफनाए या जलाए जा चुके लोग हमेशा के लिए मरकर जलाए या दफनाए जा चुके हैं, और इसलिए मुर्दा अतीत को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता।" (आधुनिक भारत, एन.सी.ई.आर.टी., पृ.-187) आलोचक रेवती रमण वस्तुतः प्रसाद के माध्यम से 'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी' पर रुककर विचार करने का बार-बार आग्रह करते नजर आए हैं। इसलिए वे जातीय अस्मिता के लिए संकट की घड़ी में अतीत उन्मुखता को स्वाभाविक मानते हैं। परन्तु अतीत उन्मुखता के अपने खतरे हैं, इस तथ्य को प्रसाद भलीभाँति समझते हैं। इसलिए अतीत के सकारात्मक पहलुओं पर विशेष ध्यानाकर्षण करते हैं। इसलिए आलोचक रेवती रमण जस्टिस रानाडे की तरफ पाठक का ध्यान नहीं खींचते हैं। उन्हें शायद इस बात का डर है कि पाठक मुख्य उद्देश्य 'जातीय मनोभूमि की तलाश' से भटक कर संकीर्ण जातीय विमर्श की गली में प्रवेश कर जाएगा। जबकि वे पाठक को सार्थक लेखन जातीय मनोभूमि के राजमार्ग पर बिना किसी अवरोध के दौड़ते हुए देखना चाहते हैं। इसलिए कामायनी पर विचार के क्रम में पुनः गांधीजी के असहयोग आंदोलन में सक्रिय स्वार्थी तत्त्वों की पहचान करने एवं कर्त्तव्य पालन से अधिक सत्ता की भूख उनकी आँखों में देखते हैं। कामायनी की आलोचना प्रक्रिया को बीसवीं शताब्दी के मानव-संघर्ष के रूप में समझने-समझाने की इस आधुनिक प्रवृत्ति पर पाठक का रीझ जाना स्वाभाविक है।

यह अकारण नहीं है कि जब रेवती जी लिखते हैं तो लगता है कि जातीय संवेदना और भारतीय संस्कारों को एक आधुनिक आयाम प्रदान कर रहे हों। वे आधुनिक युग में अपने साहित्यिक धरोहर व परंपरा से अपरिचित आलोचकों को देखकर दुःखी लगते हैं। उनकी चिन्ता जाति की निन्दा से संपृक्त है। वे लिखते हैं—"हिन्दी में ऐसे आलोचक अब दुर्लभ होते जा रहे हैं, जिन्हें पिछले एक हजार वर्ष से भी अधिक समृद्ध साहित्यिक परंपरा और इतिहास की गंभीर समझ हो।" इस कड़ी में आलोचना के मूर्धन्य हस्ताक्षर नामवर सिंह को भारतीय साहित्य परंपरा के अद्वितीय अन्वेषक के रूप में स्थान प्रदान करते हैं। नामवर जी की शोध-दृष्टि के वे कायल हैं। 'जातीय मनोभूमि की तलाश' आलोचना-संग्रह में महत्त्वपूर्ण कवि व उपन्यासकार अज्ञेय के साथ-साथ नयी कविता आंदोलन को गति प्रदान करने वाले डॉ० धर्मवीर भारती की कविताओं का दूसरा संग्रह 'सात गीत वर्ष' को आलोचना हेतु चुनते हैं। आलोचना की संस्कृति का निर्माण करते हुए उन्हें विजयदेव नारायण साही और डॉ० नामवर सिंह विशेष प्रिय लगते हैं। भारतीय संस्कृति के दर्पण में लेखक द्वारा अपना

और अपने समय का चेहरा देखने का उपक्रम आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की कालजयी रचना 'कालिदास' पर सार्थक- विमर्श करते नजर आते हैं। हिन्दी कहानी के समकालीन परिदृश्य में ज्ञानरंजन को वे 'नयी कहानी' के बाद वाले दौर के प्रतिनिधि लेखक मानते हैं तथा उनकी कला को पाश्चात्य प्रभावों से लगभग अनाक्रांत। आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय के आलोचना कर्म से प्रभावित हैं तो उपन्यासकार दूधनाथ सिंह पर उनके 'आखिरी कलाम' उपन्यास की कटोर आलोचना करने से भी नहीं हिचकते हैं। 'याद हो कि न याद हो' के बहाने काशीनाथ सिंह पर पाठक का ध्यानाकर्षण करते हैं। वहीं मार्क्सवादी साहित्येतिहास-दृष्टि की मीमांसा भी करते हैं। 'संस्कृति की उत्तरकथा' पुस्तक के लेखक शंभुनाथ उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियों, उपभोक्तावाद और बड़े संचार माध्यमों की भूमिका को भारतीय समाज पर साम्राज्यवादी हमले की शक्ल में देखते हैं। इस तरह जातीय मनोभूमि की तलाश की पावनधारा भक्तिधारा के विमर्श से प्रारंभ होकर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नयी कहानी के समृद्ध स्रोतों से गुजरते हुए संस्कृति की उत्तरकथा तक अबाध गति से गतिशील है। यह गतिशीलता न केवल परंपरा में है। बल्कि आलोचक रेवती रमण के अध्ययन-अध्यापन व आलोचना में भी विधान है।

❑